अध्याय 6

मृदा

क्या आपने कभी उस सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारक के बारे में सोचा है जो धरातल पर वृक्षों, घास, फसलों तथा जीवन के अनेक रूपों का पोषण करता है? क्या कोई मिट्टी के बिना घास का एक तिनका भी उगा सकता है? यद्यपि जलीय प्रकृति के पौधे और प्राणी जल में जीवित रहते हैं परंतु क्या वे जल के द्वारा मिट्टी से पोषक तत्त्व ग्रहण नहीं करते? आप अनुभव कर सकते हैं कि मृदा भू-पर्पटी की सबसे महत्त्वपूर्ण परत है। यह एक मूल्यवान संसाधन है। हमारा अधिकतर भोजन और वस्त्र, मिट्टी में उगने वाली भूमि-आधारित फसलों से प्राप्त होता है। दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हम जिस मिट्टी पर निर्भर करते हैं उसका विकास हजारों वर्षों में होता है। अपक्षय और क्रमण के विभिन्न कारक जनक सामग्री पर कार्य करके मृदा की एक पतली परत का निर्माण करते हैं।

मृदा शैल, मलवा और जैव सामग्री का सम्मिश्रण होती है जो पृथ्वी की सतह पर विकसित होते हैं। मृदा-निर्माण को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक हैं- उच्चावच, जनक सामग्री, जलवायु, वनस्पति तथा अन्य जीव रूप और समय। इनके अतिरिक्त मानवीय क्रियाएँ भी पर्याप्त सीमा तक इसे प्रभावित करती हैं। मृदा के घटक खनिज कण, ह्यूमस, जल तथा वायु होते हैं। इनमें से प्रत्येक की वास्तविक मात्रा मृदा के प्रकार पर निर्भर करती है। कुछ मृदाओं में, इनमें से एक या अधिक घटक कम मात्रा में होता है जबकि अन्य कुछ मृदाओं में इन घटकों का संयोजन भिन्न प्रकार का पाया जाता है।

क्या आपने वन महोत्सव मनाते समय अपने स्कूल के मैदान में वृक्ष लगाने के लिए कभी गड्ढा खोदा है? क्या इस गड्ढे में मिट्टी की परतें समरूप थीं अथवा इस में शीर्ष से तली तक मृदा के रंग अलग-अलग थे?

यदि हम भूमि पर एक गड्ढा खोदें और मृदा को देखें तो वहाँ हमें मृदा की तीन परतें दिखाई देती हैं, जिन्हें संस्तर कहा जाता है। 'क' संस्तर सबसे ऊपरी खंड होता है, जहाँ पौधों की वृद्धि के लिए अनिवार्य जैव पदार्थों का खनिज पदार्थ, पोषक तत्त्वों तथा जल से संयोग होता है। 'ख' संस्तर 'क' संस्तर तथा 'ग' संस्तर के बीच संक्रमण खंड होता है जिसे नीचे व ऊपर दोनों से पदार्थ प्राप्त होते हैं। इसमें कुछ जैव पदार्थ होते हैं तथापि खनिज पदार्थ का अपक्षय स्पष्ट नजर आता है। 'ग' संस्तर की रचना ढीली जनक सामग्री से होता है। यह परत मृदा निर्माण की प्रक्रिया में प्रथम अवस्था होती है और अंततः ऊपर की दो परतें इसी से बनती हैं। परतों की इस व्यवस्था को मृदा परिच्छेदिका कहा जाता है। इन तीन संस्तरों के नीचे एक चट्टान होती है जिसे जनक चट्टान अथवा आधारी चट्टान कहा जाता है। मृदा, जिसका एक जटिल तथा भिन्न अस्तित्त्व है, सदैव मृदा वैज्ञानिकों को आकर्षित करती रही है। इसके महत्त्व को समझने के लिए आवश्यक है कि मृदा का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाए। मृदा का वर्गीकरण इसी लक्ष्य को प्राप्त करने का एक प्रयास है।

मृदा का वर्गीकरण

भारत में भिन्न-भिन्न प्रकार के उच्चावच, भूआकृति, जलवायु परिमंडल तथा वनस्पतियाँ पाई जातीं हैं। इंहोंने भारत में अनेक प्रकार की मिट्टियों के विकास में योगदान दिया है।

प्राचीन काल में मृदा को दो मुख्य वर्गों में बाँटा जाता था– उर्वर, जो उपजाऊ थी और ऊसर, जो अनुर्वर थी। 16वीं शताब्दी में मृदा का वर्गीकरण उनकी सहज विशेषताओं तथा बाह्य लक्षणों, जैसे– गठन, रंग, भूमि का ढाल और मिट्टी में नमी की मात्रा के आधार पर किया गया था। गठन के आधार पर मृदाओं के मुख्य प्रकार थे– बलुई, मृण्मय, पांशु तथा दुमट इत्यादि। रंग के आधार पर वे लाल, पीली, काली इत्यादि थीं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद अनेक संस्थानों द्वारा मृदा के वैज्ञानिक सर्वेक्षण किए गए। सन् 1956 में स्थापित भारत के मृदा सर्वेक्षण विभाग ने दामोदर घाटी जैसे कुछ चुने हुए क्षेत्रों में मृदाओं के व्यापक अध्यापन किए। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् (आई.सी.ए.आर.) के तत्त्वाधान में राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण ब्यूरो तथा भूमि–उपयोग आयोजन एवं संस्थान ने भारत की मृदाओं पर बहुत–से अध्ययन किए। मृदा के अध्ययन तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इसे तुलनात्मक बनाने के प्रयासों के अंतर्गत आई.सी.ए.आर. ने भारतीय मृदाओं को उनकी प्रकृति और उन के गुणों के आधार पर वर्गीकृत किया है। यह वर्गीकरण संयुक्त राज्य अमेरिका के कृषि विभाग (यू.एस.डी.ए.) मृदा वर्गीकरण पद्धति पर आधारित है।

आई.सी.ए.आर. ने यू.एस.डी.ए. मृदा वर्गीकरण के अनुसार भारत की मिट्टियों को निम्नलिखित क्रम में वर्गीकृत किया है।

क्र. सं.	*क्रम*	*क्षेत्र (हजार हैक्टेयरों में)*	*प्रतिशत*
(i)	इंसेप्टीसोल्स	130372.90	39.74
(ii)	एंटीसोल्स	92131.71	28.08
(iii)	एल्फीसोल्स	44448.68	13.55
(iv)	वर्टीसोल्स	27960.00	8.52
(v)	एरीडीसोल्स	14069.00	4.28
(vi)	अल्टीसोल्स	8250.00	2.51
(vii)	मॉलीसोल्स	1320.00	0.40
(viii)	अन्य	9503.10	2.92
	योग		**100**

स्रोत : भारतीय मृदा, राष्ट्रीय भू–सर्वेक्षण एवं भू–उपयोग ब्यूरो, प्रकाशन संख्या–94

उत्पत्ति, रंग, संयोजन तथा अवस्थिति के आधार पर भारत की मिट्टियों को निम्नलिखित प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है:

(i) जलोढ़ मृदाएँ
(ii) काली मृदाएँ
(iii) लाल और पीली मृदाएँ
(iv) लैटेराइट मृदाएँ
(v) शुष्क मृदाएँ
(vi) लवण मृदाएँ
(vii) पीटमय मृदाएँ
(viii) वन मृदाएँ

जलोढ़ मृदाएँ

जलोढ़ मृदाएँ उत्तरी मैदान और नदी घाटियों के विस्तृत भागों में पाई जाती हैं। ये मृदाएँ देश के कुल क्षेत्रफल के

चित्र 6.1 : जलोढ़ मृदा

लगभग 40 प्रतिशत भाग को ढके हुए हैं। ये निक्षेपण मृदाएँ हैं जिन्हें नदियों और सरिताओं ने वाहित तथा निक्षेपित किया है। राजस्थान के एक संकीर्ण गलियारे से होती हुई ये मृदाएँ गुजरात के मैदान में फैली मिलती हैं। प्रायद्वीपीय प्रदेश में ये पूर्वी तट की नदियों के डेल्टाओं और नदियों की घाटियों में पाई जाती हैं।

जलोढ़ मृदाएँ गठन में बलुई दुमट से चिकनी मिट्टी की प्रकृति की पाई जाती हैं। सामान्यत: इनमें पोटाश की मात्रा अधिक और फ़ॉस्फोरस की मात्रा कम पाई जाती है। गंगा के ऊपरी और मध्यवर्ती मैदान में 'खादर' और 'बांगर' नाम की दो भिन्न मृदाएँ विकसित हुई हैं। खादर प्रतिवर्ष बाढ़ों के द्वारा निक्षेपित होने वाला नया जलोढ़क

© NCERT not to be republished

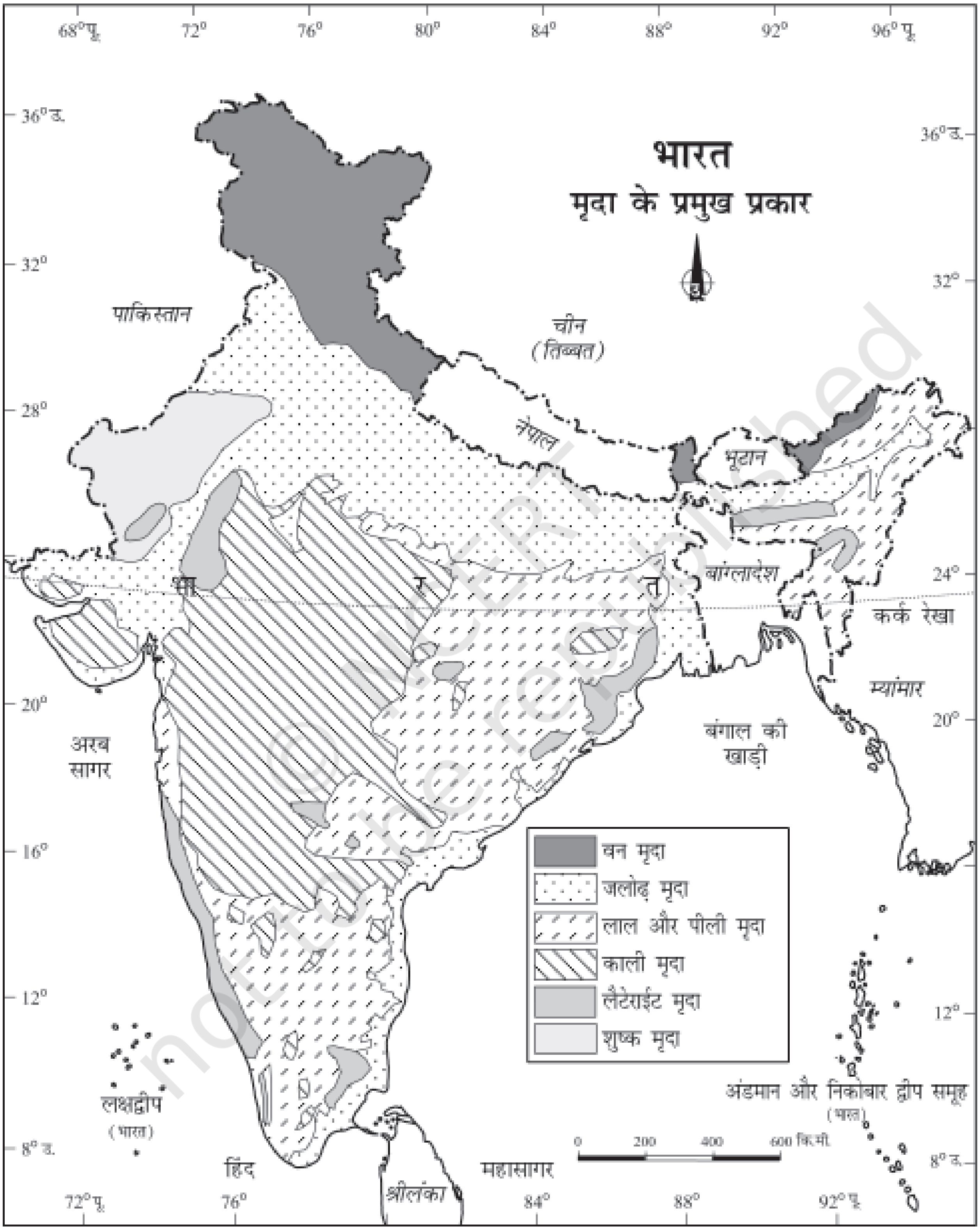

चित्र 6.2 : भारत : मृदा के प्रमुख प्रकार

है, जो महीन गाद होने के कारण मृदा की उर्वरता बढ़ा देता है। बांगर पुराना जलोढ़क होता है जिसका जमाव बाढ़कृत मैदानों से दूर होता है। खादर और बांगर मृदाओं में कैल्सियमी संग्रथन अर्थात् कंकड़ पाए जाते हैं। निम्न तथा मध्य गंगा के मैदान और ब्रह्मपुत्र घाटी में ये मृदाएँ अधिक दुमटी और मृण्मय हैं। पश्चिम से पूर्व की ओर इनमें बालू की मात्रा घटती जाती है।

जलोढ़ मृदाओं का रंग हल्के धूसर से राख धूसर जैसा होता है। इसका रंग निक्षेपण की गहराई, जलोढ़ के गठन और निर्माण में लगने वाली समयावधि पर निर्भर करता है। जलोढ़ मृदाओं पर गहन कृषि की जाती है।

काली मृदाएँ

काली मृदाएँ दक्कन के पठार के अधिकतर भाग पर पाई जाती हैं। इसमें महाराष्ट्र के कुछ भाग, गुजरात, आंध्र प्रदेश तथा तमिलनाडु के कुछ भाग शामिल हैं। गोदावरी और कृष्णा नदियों के ऊपरी भागों और दक्कन के पठार के उत्तरी-पश्चिमी भाग में गहरी काली मृदा पाई जाती है। इन मृदाओं को 'रेगर' तथा 'कपास वाली काली मिट्टी' भी कहा जाता है। आमतौर पर काली मृदाएँ मृण्मय, गहरी और अपारगम्य होती हैं। ये मृदाएँ गीले होने पर फूल जाती हैं और चिपचिपी हो जाती हैं। सूखने पर ये सिकुड़ जाती हैं। इस प्रकार शुष्क ऋतु में इन मृदाओं में चौड़ी दरारें पड़ जाती हैं। इस समय ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे इनमें 'स्वतः जुताई' हो गई हो। नमी के धीमे अवशोषण और नमी के क्षय की इस विशेषता के कारण काली मृदा में एक लम्बी अवधि तक नमी बनी रहती है।

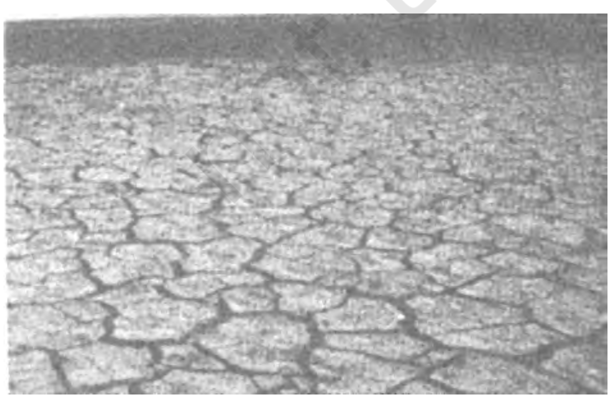

चित्र 6.3 : शुष्क ऋतु में काली मिट्टी

इसके कारण फसलों को, विशेष रूप से वर्षाधीन फसलों को, शुष्क ऋतु में भी नमी मिलती रहती है और वे फलती फूलती रहती हैं।

रासायनिक दृष्टि से काली मृदाओं में चूने, लौह, मैग्नीशिया तथा ऐलुमिना के तत्त्व काफी मात्रा में पाए जाते हैं। इनमें पोटाश की मात्रा भी पाई जाती है। लेकिन इनमें फ़ॉस्फोरस, नाइट्रोजन और जैव पदार्थों की कमी होती है। इस मृदा का रंग गाढ़े काले और स्लेटी रंग के बीच की विभिन्न आभाओं का होता है।

लाल और पीली मृदाएँ

लाल मृदा का विकास दक्कन के पठार के पूर्वी तथा दक्षिणी भाग में कम वर्षा वाले उन क्षेत्रों में हुआ है, जहाँ रवेदार आग्नेय चट्टानें पाई जाती हैं। पश्चिमी घाट के गिरिपद क्षेत्र की एक लंबी पट्टी में लाल दुमटी मृदा पाई जाती है। पीली और लाल मृदाएँ ओडिशा तथा छत्तीसगढ़ के कुछ भागों और मध्य गंगा के मैदान के दक्षिणी भागों में पाई जाती है। इस मृदा का लाल रंग रवेदार तथा कायांतरित चट्टानों में लोहे के व्यापक विसरण के कारण होता है। जलयोजित होने के कारण यह पीली दिखाई पड़ती है। महीने कणों वाली लाल और पीली मृदाएँ सामान्यतः उर्वर होती हैं। इसके विपरीत मोटे कणों वाली उच्च भूमियों की मृदाएँ अनुर्वर होती हैं। इनमें सामान्यतः नाइट्रोजन, फ़ॉस्फोरस और ह्यूमस की कमी होती है।

लैटेराइट मृदाएँ

लैटेराइट एक लैटिन शब्द 'लेटर' से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ ईंट होता है। लैटेराइट मृदाएँ उच्च तापमान और भारी वर्षा के क्षेत्रों में विकसित होती हैं। ये मृदाएँ उष्ण कटिबंधीय वर्षा के कारण हुए तीव्र निक्षालन का परिणाम हैं। वर्षा के साथ चूना और सिलिका तो निक्षालित हो जाते हैं तथा लोहे के ऑक्साइड और अल्यूमीनियम के यौगिक से भरपूर मृदाएँ शेष रह जाती हैं। उच्च तापमानों में आसानी से पनपने वाले जीवाणु ह्यूमस की मात्रा को तेजी से नष्ट कर देते हैं। इन मृदाओं में जैव पदार्थ, नाइट्रोजन, फ़ॉस्फ़ेट और कैल्सियम की कमी होती

© NCERT not to be republished

है तथा लौह–ऑक्साइड और पोटाश की अधिकता होती है। परिणामस्वरूप लैटेराइट मृदाएँ कृषि के लिए पर्याप्त उपजाऊ नहीं हैं। फसलों के लिए उपजाऊ बनाने के लिए इन मृदाओं में खाद और उर्वरकों की भारी मात्रा डालनी पड़ती है।

तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश और केरल में काजू जैसे वृक्षों वाली फसलों की खेती के लिए लाल लैटेराइट मृदाएँ अधिक उपयुक्त हैं।

मकान बनाने के लिए लैटेराइट मृदाओं का प्रयोग ईंटें बनाने में किया जाता है। इन मृदाओं का विकास मुख्य रूप से प्रायद्वीपीय पठार के ऊँचे क्षेत्रों में हुआ है। लैटराइट मृदाएँ सामान्यत: कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु, मध्य प्रदेश तथा ओडिशा और असम के पहाड़ी क्षेत्रों में पाई जाती हैं।

शुष्क मृदाएँ

शुष्क मृदाओं का रंग लाल से लेकर किशमिशी तक होता है। ये सामान्यत: संरचना से बलुई और प्रकृती से लवणीय होती हैं। कुछ क्षेत्रों की मृदाओं में नमक की मात्रा इतनी अधिक होती है कि इनके पानी को वाष्पीकृत करके नमक प्राप्त किया जाता है। शुष्क जलवायु, उच्च

चित्र 6.4 : शुष्क मृदा

तापमान और तीव्रगति से वाष्पीकरण के कारण इन मृदाओं में नमी और ह्यूमस कम होते हैं। इनमें नाइट्रोजन अपर्याप्त और फ़ॉस्फ़ेट सामान्य मात्रा में होती है। नीचे की ओर चूने की मात्रा के बढ़ते जाने के कारण निचले संस्तरों में कंकड़ो की परतें पाई जाती हैं। मृदा के तली संस्तर में कंकड़ों की परत के बनने के कारण पानी का रिसाव सीमित हो जाता है। इसलिए सिंचाई किए जाने पर इन मृदाओं में पौधों की सतत् वृद्धि के लिए नमी सदा उपलब्ध रहती है। ये मृदाएँ विशिष्ट शुष्क स्थलाकृति वाले पश्चिमी राजस्थान में अभिलक्षणिक रूप से विकसित हुई हैं। ये मृदाएँ अनुर्वर हैं क्योंकि इनमें ह्यूमस और जैव पदार्थ कम मात्रा में पाए जाते हैं।

लवण मृदाएँ

ऐसी मृदाओं को ऊसर मृदाएँ भी कहते हैं। लवण मृदाओं में सोडियम, पौटेशियम और मैग्नीशियम का अनुपात अधिक होता है। अत: ये अनुर्वर होती हैं और इनमें किसी भी प्रकार की वनस्पति नहीं उगती। मुख्य रूप से शुष्क जलवायु और खराब अपवाह के कारण इनमें लवणों की मात्रा बढ़ती जाती है। ये मृदाएँ शुष्क और अर्ध–शुष्क तथा जलाक्रांत क्षेत्रों और अनूपों में पाई जाती हैं। इनकी संरचना बलुई से लेकर दुमटी तक होती है। इनमें नाइट्रोजन और चूने की कमी होती है। लवण मृदाओं का अधिकतर प्रसार पश्चिमी गुजरात, पूर्वी तट के डेल्टाओं और पश्चिमी बंगाल के सुंदर वन क्षेत्रों में है। कच्छ के रन में दक्षिणी–पश्चिमी मानसून के साथ नमक के कण आते हैं, जो एक पपड़ी के रूप में ऊपरी सतह पर जमा हो जाते हैं। डेल्टा प्रदेश में समुद्री जल के भर जाने से लवण मृदाओं के विकास को बढ़ावा मिलता है। अत्यधिक सिंचाई वाले गहन कृषि के क्षेत्रों में, विशेष रूप से हरित क्राँति वाले क्षेत्रों में, उपजाऊ जलोढ़ मृदाएँ भी लवणीय होती जा रही हैं। शुष्क जलवायु वाली दशाओं में अत्यधिक सिंचाई केशिका क्रिया को बढ़ावा देती है। इसके परिणामस्वरूप नमक ऊपर की ओर बढ़ता है और मृदा की सबसे ऊपरी परत में नमक जमा हो जाता है। इस प्रकार के क्षेत्रों में, विशेष रूप में पंजाब और हरियाणा में मृदा की लवणता की समस्या से निबटने के लिए जिप्सम डालने की सलाह दी जाती है।

पीटमय मृदाएँ

ये मृदाएँ भारी वर्षा और उच्च आर्द्रता से युक्त उन क्षेत्रों में पाई जाती हैं जहाँ वनस्पति की वृद्धि अच्छी हो। अत: इन क्षेत्रों में मृत जैव पदार्थ बड़ी मात्रा में इकट्ठे हो जाते

हैं, जो मृदा को ह्यूमस और पर्याप्त मात्रा में जैव तत्त्व प्रदान करते हैं। इन मृदाओं में जैव पदार्थों की मात्रा 40 से 50 प्रतिशत तक होती है। ये मृदाएँ सामान्यत: गाढ़े और काले रंग की होती हैं। अनेक स्थानों पर ये क्षारीय भी हैं। ये मृदाएँ अधिकतर बिहार के उत्तरी भाग, उत्तराचंल के दक्षिणी भाग, पश्चिम बंगाल के तटीय क्षेत्रों, उड़ीसा और तमिलनाडु में पाई जाती हैं।

वन मृदाएँ

अपने नाम के अनुरूप ये मृदाएँ पर्याप्त वर्षा वाले वन क्षेत्रों में ही बनती हैं। इन मृदाओं का निर्माण पर्वतीय पर्यावरण में होता है। इस पर्यावरण में परिवर्तन के अनुसार मृदाओं का गठन और संरचना बदलती रहती हैं। घाटियों में ये दुमटी और पांशु होती हैं तथा ऊपरी ढालों पर ये मोटे कणों वाली होती हैं। हिमालय के हिमाच्छादित क्षेत्रों में इन मृदाओं का अनाच्छादन होता रहता है और ये अम्लीय और कम ह्यूमस वाली होती हैं। निचली घाटियों में पाई जाने वाली मृदाएँ उर्वर होती हैं।

ऊपर की गई चर्चा से स्पष्ट होता है कि मृदाएँ, उनका गठन, गुण व प्रकृति फसलों, पौधों और वनस्पति के अंकुरण एवं वृद्धि के लिए अति महत्त्वपूर्ण है। मृदाएँ जीवित तंत्र होती हैं। किसी भी अन्य प्राणी की तरह यह विकसित, क्षय तथा निम्नीकृत होती हैं। यदि समय पर उनका सही उपचार किया जाए तो उनमें सुधार भी होता है। मृदाएँ उस तंत्र के अन्य घटकों पर गहरा प्रभाव डालती हैं, जिसका वे स्वयं एक अंग हैं।

मृदा अवकर्षण

मोटे तौर पर मृदा अवकर्षण को मृदा की उर्वरता के ह्रास के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। इसमें मृदा का पोषण स्तर गिर जाता है तथा अपरदन और दुरुपयोग के कारण मृदा की गहराई कम हो जाती है। भारत में मृदा संसाधनों के क्षय का मुख्य कारक मृदा अवकर्षण है। मृदा अवकर्षण की दर भूआकृति, पवनों की गति तथा वर्षा की मात्रा के अनुसार एक स्थान से दूसरे स्थान पर भिन्न होती है।

मृदा अपरदन

मृदा के आवरण का विनाश, मृदा अपरदन कहलाता है। बहते जल और पवनों की अपरदनात्मक प्रक्रियाएँ तथा मृदा निर्माणकारी प्रक्रियाएँ साथ-साथ घटित हो रही होती हैं। सामान्यत: इन दोनों प्रक्रियाओं में एक संतुलन बना रहता है। धरातल से सूक्ष्म कणों के हटने की दर वही होती है जो मिट्टी की परत में कणों के जुड़ने की होती है।

कई बार प्राकृतिक अथवा मानवीय कारकों से यह संतुलन बिगड़ जाता है, जिससे मृदा के अपरदन की दर बढ़ जाती है। मृदा अपरदन के लिए मानवीय गतिविधियाँ भी काफी हद तक उत्तरदायी हैं। जनसंख्या बढ़ने के साथ भूमि की माँग भी बढ़ने लगती हैं। मानव बस्तियों, कृषि, पशुचारण तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वन तथा अन्य प्राकृतिक वनस्पति साफ कर दी जाती हैं।

मृदा को हटाने और उसका परिवहन कर सकने के गुण के कारण पवन और जल मृदा अपरदन के दो शक्तिशाली कारक हैं। पवन द्वारा अपरदन शुष्क और अर्ध-शुष्क प्रदेशों में महत्त्वपूर्ण होता है। भारी वर्षा और खड़ी ढालों वाले प्रदेशों में बहते जल द्वारा किया गया अपरदन महत्त्वपूर्ण होता है। जल-अपरदन अपेक्षाकृत अधिक गंभीर है और यह भारत के विस्तृत क्षेत्रों में हो रहा है। जल-अपरदन दो रूपों में होता है- परत अपरदन और अवनालिका अपरदन। परत अपरदन समतल भूमियों पर मूसलाधार वर्षा के बाद होता है और इसमें मृदा का

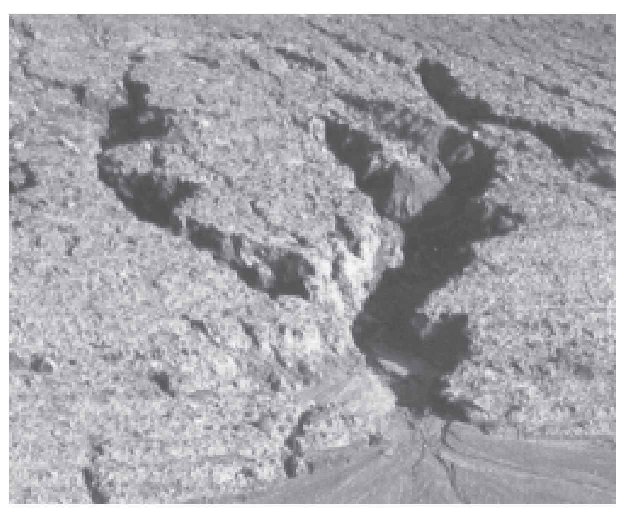

चित्र 6.5 : मृदा अपरदन

© NCERT not to be republished

हटना आसानी से दिखाई भी नहीं देता, किंतु यह अधिक हानिकारक है क्योंकि इससे मिट्टी की सूक्ष्म और अधिक उर्वर ऊपरी परत हट जाती है। अवनालिका अपरदन सामान्यत: तीव्र ढालों पर होता है। वर्षा से गहरी हुई अवनालिकाएँ कृषि भूमियों को छोटे-छोटे टुकड़ों में खंडित कर देती हैं जिससे वे कृषि के लिए अनुपयुक्त हो जाती हैं। जिस प्रदेश में अवनालिकाएँ अथवा बीहड़ अधिक संख्या में होते हैं, उसे उत्खात भूमि स्थलाकृति कहा जाता है। चंबल नदी की द्रोणी में बीहड़ बहुत विस्तृत है। इसके अतिरिक्त ये तमिलनाडु और पश्चिमी बंगाल में भी पाए जाते हैं। देश की लगभग 8,000 हैक्टेयर भूमि प्रतिवर्ष बीहड़ में परिवर्तित हो जाती है। किस तरह के क्षेत्रों में अवनालिका अपरदन संभव है?

मृदा अपरदन भारतीय कृषि के लिए एक गंभीर समस्या बन गई है। इसके दुष्प्रभाव अन्य क्षेत्रों में भी दिखाई पड़ते हैं। नदी की घाटियों में अपरदित पदार्थों के जमा होने से उनकी जल प्रवाह क्षमता घट जाती है। इससे प्राय: बाढ़े आती हैं तथा कृषि-भूमि को क्षति पहुँचती है।

वनोन्मूलन, मृदा अपरदन के प्रमुख कारणों में से एक है। पौधों की जड़े मृदा को बाँधे रखकर अपरदन को रोकती हैं। पत्तियाँ और टहनियाँ गिराकर वे मृदा में ह्यूमस की मात्रा में वृद्धि करते हैं। वास्तव में संपूर्ण भारत में वनों का विनाश हुआ है लेकिन मृदा अपरदन पर उनका प्रभाव देश के पहाड़ी भागों में अधिक पड़ा है।

भारत के सिंचित क्षेत्रों में कृषि योग्य भूमि का काफी बड़ा भाग अति सिंचाई के प्रभाव से लवणीय होता जा रहा है। मृदा के निचले संस्तरों में जमा हुआ नमक धरातल के ऊपर आकर उर्वरता को नष्ट कर देता है। रासायनिक उर्वरक भी मृदा के लिए हानिकारक हैं। जब तक मृदा को पर्याप्त ह्यूमस नहीं मिलता, रसायन इसे कठोर बना देते हैं और दीर्घकाल में इसकी उर्वरता घट जाती है। यह समस्या नदी घाटी परियोजनाओं के उन सभी समादेशी क्षेत्रों (command area) में अधिक है, जो हरित-क्राँति के आरंभिक लाभ भोगी थे। अनुमानों के अनुसार भारत की कुल भूमि का लगभग आधा भाग किसी न किसी मात्रा में अवकर्षण से प्रभावित है।

प्रति वर्ष भारत में अवकर्षण के कारक लाखों टन मृदा व उसके पोषक तत्त्वों का ह्रास करते हैं जिसका दुष्प्रभाव हमारी राष्ट्रीय उत्पादकता पर पड़ता है। इसलिए यह आवश्यक है कि मृदाओं के उद्धरण और संरक्षण के लिए तत्काल उपाय किए जाएँ।

मृदा संरक्षण

यदि मृदा अपरदन और मृदा क्षय मानव द्वारा किया जाता है, तो स्पष्टत: मानवों द्वारा इसे रोका भी जा सकता है। संतुलन बनाए रखने के प्रकृति के लिए अपने नियम हैं। बिना संतुलन बिगाड़े भी प्रकृति मानवों को अपनी अर्थव्यवस्था का विकास करने के पर्याप्त अवसर प्रदान करती है। मृदा संरक्षण एक विधि है, जिसमें मिट्टी की उर्वरता बनाए रखी जाती है, मिट्टी के अपरदन और क्षय को रोका जाता है और मिट्टी की निम्नीकृत दशाओं को सुधारा जाता है।

मृदा अपरदन मूल रूप से दोषपूर्ण पद्धतियों द्वारा बढ़ता है। किसी भी तर्कसंगत समाधान के अंतर्गत पहला काम ढालों की कृषि योग्य खुली भूमि पर खेती को रोकना है। 15 से 25 प्रतिशत ढाल प्रवणता वाली भूमि का उपयोग कृषि के लिए नहीं होना चाहिए। यदि ऐसी भूमि पर खेती करना जरूरी भी हो जाए तो इस पर सावधानी से सीढ़ीदार खेत बना लेने चाहिए। भारत के विभिन्न भागों में, अति चराई और स्थानांतरी कृषि ने भूमि के प्राकृतिक आवरण को दुष्प्रभावित किया है, जिससे विस्तृत क्षेत्र अपरदन की चपेट में आ गए हैं। ग्रामवासियों को इनके दुष्परिणामों से अवगत करवा कर इन्हें

चित्र 6.6 : सीढ़ीदार कृषि

© NCERT not to be republished

(अति चराई और स्थानांतरी कृषि) नियमित और नियंत्रित करना चाहिए। समोच्च रेखा के अनुसार मेढ़बंदी, समोच्च रेखीय सीढ़ीदार खेत बनाना, नियमित वानिकी, नियंत्रित चराई, आवरण फसलें उगाना, मिश्रित खेती तथा शस्यावर्तन आदि उपचार के कुछ ऐसे तरीके हैं जिनका उपयोग मृदा अपरदन को कम करने के लिए प्रायः किया जाता है।

अवनालिका अपरदन को रोकने तथा उनके बनने पर नियंत्रण के प्रयत्न किए जाने चाहिए। अगुंल्याकार अवनालिकाओं को सीढ़ीदार खेत बनाकर समाप्त किया जा सकता है। बड़ी अवनालिकाओं में जल की अपरदनात्मक तीव्रता को कम करने के लिए रोक बाँधों की एक शृंखला बनानी चाहिए। अवनालिकाओं के शीर्ष की ओर फैलाव को नियंत्रित करने पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। यह कार्य अवनालिकाओं को बंद करके, सीढ़ीदार खेत बनाकर अथवा आवरण वनस्पति का रोपण करके किया जा सकता है।

शुष्क और अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में कृषि योग्य भूमि पर बालू के टीलों के प्रसार को वृक्षों की रक्षक मेखला बनाकर तथा वन्य-कृषि करके रोकने के प्रयास करने चाहिए। कृषि के लिए अनुपयुक्त भूमि को चरागाहों में बदल देना चाहिए। केंद्रीय शुष्क भूमि अनुसंधान संस्थान (सीएजेडआरआई) ने पश्चिमी राजस्थान में बालू के टीलों को स्थिर करने के प्रयोग किए हैं।

भारत सरकार द्वारा स्थापित केंद्रीय मृदा संरक्षण बोर्ड ने देश के विभिन्न भागों में मृदा संरक्षण के लिए अनेक योजनाएँ बनाई हैं। ये योजनाएँ जलवायु की दशाओं, भूमि संरूपण तथा लोगों के सामाजिक व्यवहार पर आधारित हैं। ये योजनाएँ भी एक-दूसरे से तालमेल बनाए बिना ही चलाई गई हैं। अतः मृदा संरक्षण का सर्वोत्तम उपाय भूमि उपयोग की समन्वित योजनाएँ ही हो सकती हैं। भूमि का उनकी क्षमता के अनुसार ही वर्गीकरण होना चाहिए। भूमि उपयोग के मानचित्र बनाए जाने चाहिए और भूमि का सर्वथा सही उपयोग किया जाना चाहिए। मृदा संरक्षण का निर्णायक दायित्व उन लोगों पर है, जो उसका उपयोग करते हैं और उससे लाभ उठाते हैं।

अभ्यास

1. नीचे दिए गए चार विकल्पों में से सही उत्तर को चुनिए:
   - (i) मृदा का सर्वाधिक व्यापक ओर सर्वाधिक उपजाऊ प्रकार कौन-सा है?
     - (क) जलोढ़ मृदा
     - (ख) काली मृदा
     - (ग) लैटेराइट मृदा
     - (घ) वन मृदा
   - (ii) रेगर मृदा का दूसरा नाम है-
     - (क) लवण मृदा
     - (ख) शुष्क मृदा
     - (ग) काली मृदा
     - (घ) लैटेराइट मृदा
   - (iii) भारत में मृदा के ऊपरी पर्त ह्रास का मुख्य कारण है-
     - (क) वायु अपरदन
     - (ख) अत्यधिक निक्षालन
     - (ग) जल अपरदन
     - (घ) इनमें से कोई नहीं
   - (iv) भारत के सिंचित क्षेत्रों में कृषि योग्य भूमि निम्नलिखित में से किस कारण से लवणीय हो रही है-
     - (क) जिप्सम की बढ़ोत्तरी
     - (ख) अति सिंचाई
     - (ग) अति चारण
     - (घ) रासायनिक खादों का उपयोग
2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 30 शब्दों में दीजिए।
   - (i) मृदा क्या है?
   - (ii) मृदा निर्माण के प्रमुख उत्तरदायी कारक कौन-से हैं?
   - (iii) मृदा परिच्छेदिका के तीन संस्तरों के नामों का उल्लेख कीजिए।

© NCERT not to be republished

(iv) मृदा अवकर्षण क्या होता है?

(v) खादर और बांगर में क्या अंतर है?

3. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 125 शब्दों तक में दीजिए।

(i) काली मृदाएँ किन्हें कहते हैं? इनके निर्माण तथा विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

(ii) मृदा संरक्षण क्या होता है? मृदा संरक्षण के कुछ उपाय सुझाइए।

(iii) आप यह कैसे जानेंगे कि कोई मृदा उर्वर है या नहीं? प्राकृतिक रूप से निर्धारित उर्वरता और मानवकृत उर्वरता में अंतर स्पष्ट कीजिए।

परियोजना/क्रियाकलाप

1. अपने क्षेत्र से मृदा के विभिन्न नमूने एकत्रित कीजिए तथा मृदा के प्रकारों पर एक रिपोर्ट तैयार कीजिए।

2. भारत के रेखा मानचित्र पर मृदा के निम्नलिखित प्रकारों से ढके क्षेत्रों को चिह्नित कीजिए।

(i) लाल मृदा

(ii) लैटेराइट मृदा

(iii) जलोढ़ मृदा

© NCERT not to be republished